3

मौर्य कालीन कला

ईसा-पूर्व छठी शताब्दी में गंगा की घाटी में बौद्ध और जैन धर्मों के रूप में नए धार्मिक और सामाजिक आंदोलनों की शुरूआत हुई। ये दोनों धर्म श्रमण परंपरा के अंग थे। दोनों धर्म जल्द ही लोकप्रिय हो गए क्योंकि वे सनातन धर्म की वर्ण एवं जाति व्यवस्था का विरोध करते थे। उस समय मगध एक शक्तिशाली राज्य के रूप में उभरा और उसने अन्य राज्यों को अपने नियंत्रण में ले लिया। ईसा पूर्व चौथी शताब्दी तक मौर्यों ने अपना प्रभुत्व जमा लिया था और ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी तक भारत का बहुत बड़ा हिस्सा मौर्यों के नियंत्रण में आ गया था। मौर्य सम्राटों में अशोक एक अत्यंत शक्तिशाली राजा हुआ, जिसने ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में बौद्धों की श्रमण परंपरा को संरक्षण दिया था। धार्मिक पद्धतियों के कई आयाम होते हैं और वे किसी एक पूजा विधि तक ही सीमित नहीं होतीं। उस समय यक्षों और मातृदेवियों की पूजा भी काफ़ी प्रचलित थी। इस प्रकार पूजा के अनेक रूप विद्यमान थे। तथापि इनमें से बौद्ध धर्म सबसे अधिक सामाजिक और धार्मिक आंदोलन के रूप में लोकप्रिय हो गया। यक्ष पूजा बौद्ध धर्म के आगमन से पहले और उसके बाद भी काफ़ी लोकप्रिय रही लेकिन आगे चलकर यह बौद्ध और जैन धर्मों में विलीन हो गई।

खंभे, मूर्तियाँ और शैलकृत वास्तुकला

मठ के संबंध में स्तूपों और विहारों का निर्माण इस श्रमण परंपरा का एक अंग हो गया। तथापि इस कालावधि में स्तूपों और विहारों के अलावा, अनेक स्थानों पर पत्थर के स्तंभ बनाए गए, चट्टानें काटकर गुफ़ाएं और विशाल मूर्तियाँ बनाई गईं। स्तंभ निर्माण की परंपरा बहुत पुरानी है और यह देखने में आया है कि एकैमेनियन साम्राज्य में भी विशाल स्तंभ बनाए जाते थे। लेकिन मौर्य कालीन स्तंभ एकैमेनियन स्तंभों से भिन्न किस्म के हैं। मौर्य कालीन स्तंभ चट्टानों से कटे हुए (एक विशाल पत्थर से बने हुए) स्तंभ हैं, जिनमें उत्कीर्णकर्ता कलाकार का कौशल स्पष्ट दिखाई देता है, जबकि एकैमिनियन स्तंभ राजमिस्त्री द्वारा अनेक टुकड़ों को जोड़कर बनाए गए थे। मौर्य काल में प्रस्तर स्तंभ संपूर्ण मौर्य साम्राज्य में कई स्थानों पर स्थापित किए गए थे और उन पर शिलालेख उत्कीर्ण किए गए थे। ऐसे स्तंभों की चोटी पर साँड़, शेर, हाथी जैसे जानवरों की आकृति उकेरी हुई है। सभी शीर्षाकृतियाँ हृष्ट-पुष्ट हैं और उन्हें एक वर्गाकार या गोल वेदी पर खड़ा उकेरा गया है। गोलाकार वेदियों को सुंदर कमल फूलों से सजाया गया है। शीर्षाकृतियों वाले प्रस्तर स्तंभों में से कुछ स्तंभ आज भी सुरक्षित हैं और बिहार में बसराह-बखीरा, लौरिया-नंदनगढ़ व रामपुरवा तथा उत्तर प्रदेश में सनकिसा व सारनाथ में देखे जा सकते हैं।

सजावटी कमल सहित स्तंभ एवं शीर्ष

© NCERT not to be republished

सारनाथ में पाया गया मौर्य कालीन स्तंभ शीर्ष, जो सिंह शीर्ष के नाम से प्रसिद्ध है, मौर्य कालीन मूर्ति-परंपरा का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। यह आज हमारा राष्ट्रीय प्रतीक भी है। यह बड़ी सावधानी से उकेरा गया है। इसकी गोलाकार वेदी पर दहाड़ते हुए चार शेरों की बड़ी-बड़ी प्रतिमाएं स्थापित हैं और उस वेदी के निचले भाग में घोड़ा, साँड़, हिरन आदि को गतिमान मुद्रा में उकेरा गया है, जिसमें मूर्तिकार के उत्कृष्ट कौशल की साफ़ झलक दिखाई देती है। यह स्तंभ शीर्ष धम्म चक्र प्रवर्तन का मानक प्रतीक है और बुद्ध के जीवन की एक महान ऐतिहासिक घटना का द्योतक है।

ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में, यक्ष-यक्षिणियों और पशुओं की विशाल मूर्तियाँ बनाई गईं, शीर्षाकृतियों वाले प्रस्तर स्तम्भ बनाए व स्थापित किए गये और चट्टानों को काटकर गुफ़ाएं बनाई गईं। इनमें से अनेक स्मारक आज भी मौजूद हैं, जिनसे यक्ष पूजा की लोकप्रियता का पता चलता है और यह भी जाना जा सकता है कि यक्ष पूजा आगे चलकर किस तरह जैन धर्म और बौद्ध धर्म के स्मारकों में आकृति-प्रस्तुतीकरण का अंग बनी।

पटना, विदिशा और मथुरा जैसे अनेक स्थलों पर यक्षों तथा यक्षिणियों की बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ पाई गई हैं। ये विशाल प्रतिमाएँ अधिकतर खड़ी स्थिति में दिखाई गई हैं। इन सभी प्रतिमाओं में एक विषेश तत्व यह है कि इनकी सतह पॉलिश की हुई यानी चिकनी है। इनके चेहरों पर प्रकृति विज्ञान की निपुणता एवं स्पष्टता दिखाई देती है और अन्य अंग-प्रत्यंग का उभार स्पष्ट दिखाई देता है। यक्षिणी की प्रतिमा का एक सर्वोत्कृष्ट उदाहरण दीदारगंज, पटना में देखा जा सकता है। यह एक लंबी, ऊंची और सुगठित प्रतिमा है और इसे देखने से पता चलता है कि इसका निर्माता मानव रूपाकृति के चित्रण में कितना अधिक निपुण और संवेदनशील था। इस प्रतिमा की सतह चिकनी है।

पकी मिट्टी से बनी आकृतियों और इन प्रतिमाओं में चित्रण की दृष्टि से बहुत अंतर दिखाई देता है। ओडिशा में धौली स्थल पर चट्टान को काटकर बनाए गए विशाल हाथी की आकृति भी मूर्तिकला में रेखांकन लय पारखी की सुन्दरता का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस पर सम्राट अशोक का एक शिलालेख भी अंकित है। ये सभी प्रतिमाएं आकृति के निरूपण के सुंदर उदाहरण हैं। बिहार में बाराबार की पहाड़ियों में शैलकृत गुफ़ा (चट्टान को काटकर बनाई गई गुफ़ा) है जिसे लोमष ऋषि की गुफ़ा कहते हैं। इस गुफ़ा का प्रवेश द्वार अर्द्धवृत्ताकार चैत्य चाप (मेहराब) की तरह सजा हुआ है। चैत्य के मेहराब पर एक गतिमान हाथी की प्रतिमा उकेरी हुई है। इस गुफ़ा का भीतरी कक्ष आयताकार है और उसके पीछे एक गोलाकार कक्ष है। प्रवेश द्वार बड़े कक्ष की एक तरफ़ की दीवार पर है। यह गुफ़ा मौर्य सम्राट अशोक द्वारा आजीविक पंथ/संप्रदाय के लिए संरक्षित की गई थी। लोमष ऋषि की गुफ़ा इस काल का एक अलग अकेला उदाहरण है मगर परवर्ती काल में पूर्वी और पश्चिमी भारत में अनेक बौद्ध गुफ़ाएँ खोदी गई थीं।

यक्ष, परखम

बौद्ध और जैन धर्मों की लोकप्रियता के कारण स्तूपों और विहारों का निर्माण बड़े पैमाने पर शुरू हो गया। किंतु अनेक उदाहरण ऐसे भी मिले हैं जिनसे पता चलता है कि सनातन धर्म/हिंदू धर्म के देवी-देवताओं की प्रतिमाएं भी बनती रहीं। यह जान लेना ज़रूरी होगा कि

स्तूप अधिकतर बुद्ध के स्मृति चिन्हों (रेलिक्स) पर बनाए जाते थे। ऐसे अनेक स्तूप बिहार में राजगृह, वैशाली, वेथदीप एवं पावा, नेपाल में कपिलवस्तु, अल्लकप्पा एवं रामग्राम और उत्तर प्रदेश में कुशीनगर एवं पिप्पलिवान में स्थापित हैं। धार्मिक ग्रंथों में यह भी कहा गया है कि बुद्ध के अनेक अवशेषों पर भी स्तूप बनाए जाते थे। ऐसे स्तूप अवंती और गांधार जैसे स्थानों पर बने हुए हैं, जो गंगा की घाटी से बाहर बसे हुए थे।

स्तूप, विहार और चैत्य, बौद्धों और जैनों के मठीय संकुलों (परिसर) के भाग हैं लेकिन इनमें से अधिकांश भवन/प्रतिष्ठान बौद्ध धर्म के हैं। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी की स्तरीय संरचना का एक उदाहरण राजस्थान में बैराठ स्थल पर स्थित स्तूप है। साँची का महान स्तूप (जिस पर आगे चर्चा की जाएगी) अशोक के शासन काल में ईंटों से बनाया गया था और बाद में उसे पत्थर से भी ढक दिया गया और नई-नई चीजें भी लगा दी गईं।

कालांतर में ऐसे बहुत-से स्तूप बनाए गए जिनसे बौद्ध धर्म की लोकप्रियता का पता चलता है। ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी के दौरान और उसके बाद हमें ऐसे अनेक अभिलेखीय साक्ष्य मिले हैं जिनमें दानदाताओं का नाम और कहीं-कहीं तो उनके पेशे का नाम भी दिया गया है। इन स्तूपों और राजसी संरक्षण के उदाहरण बहुत कम मिलते हैं। संरक्षकों में आम भक्तों से लेकर गहपति (गृहपति) और राजा महाराजा भी शामिल थे। कई स्थलों पर श्रेष्ठजनों या व्यापारिक श्रेणियों द्वारा दिए गए दानों का भी उल्लेख मिलता है। लेकिन ऐसे अभिलेख बहुत कम पाए गए हैं जिनमें कलाकारों या शिल्पकारों का भी नाम दिया गया हो। अलबत्ता, महाराष्ट्र में पीतलखोड़ा गुफा में कलाकार कान्हा और कोंडाने गुफ़ा में उसके शिष्य बालक का नाम अवश्य उल्लिखित है। कुछ अभिलेखों/शिलालेखों में शिल्पकारों की श्रेणियों, जैसे प्रस्तर उत्कीर्णक, स्वर्णकार, पत्थर घिसने और चमकाने वाले, बढ़ई आदि का भी उल्लेख है। आमतौर पर संपूर्ण कार्य सामूहिक सहयोग से किया जाता था, लेकिन कहीं-कहीं स्मारक के किसी खास हिस्से का निर्माण किसी खास संरक्षक के सौजन्य से कराए जाने का भी उल्लेख पाया गया है। व्यापारी जन अपने दान का अभिलेख लिखवाते समय अपने मूल स्थान का भी उल्लेख करवाते थे।

हाथी, धौली

लोमष ऋषि, गुफा-द्वार

© NCERT not to be republished

सिंह शीर्ष, सारनाथ

© not to be republished

वाराणसी के निकट सारनाथ में लगभग एक सौ वर्ष पहले खोजे गए सिंह शीर्ष (Lion Capital) को आमतौर पर सारनाथ सिंह शीर्ष कहा जाता है। यह मौर्य कालीन मूर्तिकला का एक सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। यह भगवान बुद्ध द्वारा धम्मचक्रप्रवर्तन यानी प्रथम उपदेश देने की ऐतिहासिक घटना की स्मृति में सम्राट अशोक द्वारा बनवाया गया था।

इस सिंह शीर्ष के मूलत: पाँच अवयव/भाग थे—(i) स्तंभ (शैफ्ट) जो अब कई भागों में टूट चुका है; (ii) एक कमल घंटिका आधार; (iii) उस पर बना हुआ एक ढोल, जिसमें चार पशु दक्षिणावर्त गति के साथ दिखाए गए हैं; (iv) चार तेजस्वी सिंहों की आगे-पीछे जुड़ी हुई आकृतियाँ; और (v) एक सर्वोपरि तल धर्मचक्र, जोकि एक बड़ा पहिया है। यह चक्र इस समय टूटी हालत में है और सारनाथ के स्थलीय संग्रहालय में प्रदर्शित है। इस सिंह शीर्ष को, उपरिचक्र और कमलाधार के बिना, स्वतंत्र भारत के राष्ट्रीय प्रतीक के रूप में अपनाया गया है।

अब सारनाथ के पुरातत्व संग्रहालय मे सुरक्षित रखे गए इस सिंह शीर्ष पर बनी एक वेदी पर चार सिंह एक दूसरे से पीठ जोड़कर बैठाए गए हैं। शेरों की ये चारों आकृतियाँ अत्यंत प्रभावशाली एवं ठोस हैं। प्रतिमा की स्मारकीय विशेषता स्पष्टत: दृष्टिगोचर होती है। शेरों के चेहरे का पेशी विन्यास बहुत सुदृढ़ प्रतीत होता है। होंठों की विपर्यस्त रेखाएं और होंठों के अंत में उनके फैलाव का प्रभाव यह दर्शाता है कि कलाकार की अपनी सूक्ष्म दृष्टि शेर के मुख का स्वाभाविक चित्रण करने में सफल रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानों शेरों ने अपनी सांस भीतर रोक रखी है। अयाल (केसर) की रेखाएं तीखी हैं और उनमें उस समय प्रचलित परंपराओं का पालन किया गया है। प्रतिमा की सतह को अत्यधिक चिकना या पॉलिश किया हुआ बनाया गया है, जोकि मौर्य कालीन मूर्तिकला की एक खास विशेषता है। शेरों की घुंघराली अयाल राशि आगे निकली हुई दिखाई गई है। शेरों के शरीर के भारी बोझ को पैरों की फैली हुई मांसपेशियों के माध्यम से बखूबी दर्शाया गया है। शीर्षफलक (abacus) पर एक चक्र बना हुआ है जिसमें चारों दिशाओं में फैले हुए कुल मिलाकर 24 आरे हैं और प्रत्येक चक्र के साथ साँड़, घोड़ा, हाथी और शेर की आकृतियाँ सुंदरता से उकेरी गई हैं। चक्र का यह स्वरूप संपूर्ण बौद्ध कला में धम्मचक्र के निरूपण के लिए महत्वपूर्ण बन गया। प्रत्येक पशु आकृति सतह से जुड़ी होने के बावजूद काफी विस्तृत है। उनकी मुद्रा शीर्ष फलक पर गतिमान प्रतीत होती है। प्रत्येक चक्र के बीच में सीमित स्थान होने के बावजूद इन पशु आकृतियों से ऐसा प्रतीत होता है कि कलाकार में सीमित स्थान में भी दर्शाने की पर्याप्त क्षमता थी। वृत्ताकार शीर्ष फलक एक उल्टे कमल की आकृति पर टिका हुआ दिखाई देता है। कमल पुष्प की प्रत्येक पंखुड़ी को उसकी सघनता को ध्यान में रखते हुए बनाया गया है। नीचे के हिस्से में वक्र तलों को सुंदरता से उकेरा गया है। एक स्तंभ की आकृति होने के कारण, यह समझा गया था कि इसे चारों ओर से देखा जाएगा इसलिए दृष्टि बिंदुओं की कोई निश्चित सीमाएं नहीं रखी गई हैं। सिंह शीर्ष साँची में भी पाया गया है पर वह टूटी-फूटी हालत में है। सिंह शीर्ष वाले स्तंभ बनाने का क्रम परवर्ती काल में भी जारी रहा।

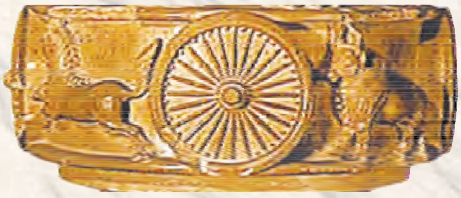

यक्षिणी, दीदारगंज

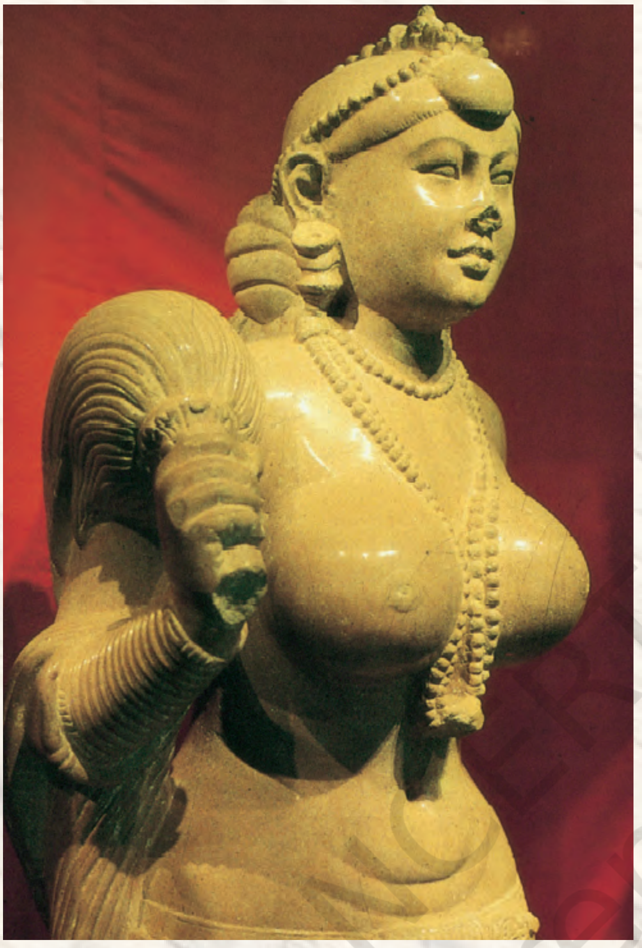

हाथ में चामर (चौरी) पकड़े खड़ी यक्षिणी की जो आदमकद मूर्ति आधुनिक पटना के दीदारगंज में मिली है, वह भी मौर्य कालीन मूर्तिकला की परंपरा का एक अच्छा उदाहरण है। यह मूर्ति पटना संग्रहालय में रखी हुई है। यह लंबी मूर्ति बलुआ पत्थर की बनी है। इसका अंगविन्यास संतुलित एवं समानुपातिक है। इसकी सतह पॉलिश की हुई (चिकनी) है। यक्षिणी को दाहिने हाथ में चौरी पकड़े हुए दिखाया गया है। इसका दूसरा हाथ टूटा हुआ है। इस प्रतिमा में रूप और माध्यम के प्रयोग में कुशलता बरती गई है। गोल गठीली काया के प्रति मूर्तिकार की संवेदनशीलता स्पष्टत: दृष्टि-गोचर होती है। चेहरा एवं कपोल गोल-गोल और मांसल दिखाए गए हैं लेकिन गर्दन अपेक्षाकृत छोटी है। यक्षिणी गले में हार पहने हुए है, जो पेट तक लटका हुआ है। पेट पर पहनी हुई चुस्त पोशाक के कारण पेट आगे निकला हुआ प्रतीत होता है। अधोवस्त्र को बड़ी सावधानी से बनाया गया है। टांगों पर पोशाक का हर मोड़ बाहर निकला हुआ दिखाया गया है, जो कुछ पारदर्शी प्रभाव उत्पन्न करता है। पोशाक की मध्यवर्ती पट्टी ऊपर से नीचे तक उसकी टांगों तक गिर रही है। वह पैरों में मोटे वजन वाले आभूषण पहने हुए है और अपनी टांगों पर मजबूती से खड़ी है। धड़ भाग का भारीपन उसके भारी उरोजों में दृष्टि-गोचर होता है। सिर के पीछे केशराशि एक गांठ में बंधी है। पीठ खुली है, पीछे का वस्त्र दोनों टांगों को ढकता है। दाहिने हाथ में पकड़ी हुई चौरी को प्रतिमा की पीठ पर फटी हुई रेखाओं के रूप में दिखाया गया है।

स्तूप आराधना, भरहुत

परवर्ती शताब्दी के स्तूपों में और बहुत-सी सुविधाएं जोड़ दी गईं, जैसे कि प्रतिमाओं से अलंकृत घिरे हुए परिक्रमा पथ। ऐसे अनेक स्तूप भी हैं जिनका निर्माण मूल रूप से तो पहले किया गया था पर आगे चलकर दूसरी शताब्दी में उनमें कुछ और नए निर्माण जोड़ दिए गए। स्तूप में एक बेलनाकार ढोल, एक वृत्ताकार अंडा और चोटी पर एक हर्मिक और छत्र होता है। ये भाग/हिस्से सदा ज्यों के त्यों रहे हैं लेकिन आगे चलकर इनके रूप और आकार में थोड़ा-बहुत परिवर्तन किया गया। गोलाकार परिक्रमा पथ के अलावा प्रवेश द्वार भी जोड़े गए। इस प्रकार, स्तूप स्थापत्य में वास्तुकारों तथा मूर्तिकारों के लिए अपना कौशल दिखाने की काफ़ी गुंजाइश होती है और वे उनमें यथावश्यक परिवर्तन-परिवर्द्धन कर सकते हैं और नई-नई प्रतिमाएँ उकेर सकते हैं।

ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी तक हमें बुद्ध की प्रतिमाओं या आकृतियों के दर्शन नहीं होते। बुद्ध को प्रतीकों, जैसे कि पदचिह्नों, स्तूपों, कमलसिंहासन, चक्र आदि के रूप में ही दर्शाया गया है। यह दर्शाता है कि इस समय तक पूजा या आराधना की पद्धति सरल थी और कभी-कभी उनके जीवन की घटनाओं को चित्रात्मक रूप से प्रस्तुत किया जाता था। जातक कथा या बुद्ध के जीवन की किसी घटना का वर्णन बौद्ध परंपरा का अभिन्न अंग बन गया था। जातक कथाएँ स्तूपों के परिक्रमा पथों और तोरण द्वारों पर चित्रित की गई हैं। चित्रात्मक परंपरा में मुख्य रूप से संक्षेप आख्यान, सतत आख्यान और घटनात्मक आख्यान पद्धति का प्रयोग किया जाता है। वैसे तो सभी बौद्ध स्मारकों में मुख्य विषय बुद्ध के जीवन की घटनाएँ ही हैं, लेकिन मूर्तियों या आकृतियों से सजावट करने के मामले में जातक कथाएँ भी समान रूप से महत्वपूर्ण रही हैं। बुद्ध के जीवन से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं पर उनमें से अक्सर बुद्ध के जन्म, गृह त्याग, ज्ञान (बुद्धत्व) प्राप्ति, धम्मचक्रप्रवर्तन और महापरिनिर्वाण (जन्म चक्र से मुक्ति) की घटनाओं को ही अक्सर चित्रित किया गया है। जिन जातक कथाओं का अक्सर अनेक स्थानों पर बार-बार चित्रण दर्शाया गया है, वे मुख्य रूप से छदंत जातक, विदुरपंडित जातक, रूरू जातक, सिबि जातक, वेस्सांतर जातक और शम जातक से हैं।

© NCERT not to be republished

अभ्यास

1. क्या आप यह सोचते हैं कि भारत में प्रतिमाएँ/मूर्तियाँ बनाने की कला मौर्य काल मे शुरू हो गई थी? इस संबंध में आपके क्या विचार हैं, उदाहरण सहित लिखें।
2. स्तूप का क्या महत्व था और स्तूप वास्तुकला का विकास कैसे हुआ?
3. बुद्ध के जीवन की वे चार घटनाएं कौन-सी थीं जिन्हें बौद्ध कला के भिन्न-भिन्न रूपों में चित्रित किया गया है, ये घटनाएं किस बात का प्रतीक थीं?
4. जातक क्या है? जातकों का बौद्ध धर्म से क्या संबंध है? पता लगाइए।